शिक्षा संवाद
2023, 10 (1): 11-18
ISSN: 2348-5558
©2023, संपादक, शिक्षा संवाद, नई दिल्ली

संवाद

रुपया मूल्य का मापदंड नहीं

लियो टॉलस्टॉय

लियो टॉलस्टॉय वैश्विक साहित्य के सर्वाधिक प्रभावशाली और महान लेखकों में से एक हैं। उनकी कालजयी रचना 'वार एंड पीस' और 'आन्ना कारेनिना' सर्वाधिक पढे जाने वाए साहित्य में से एक हैं। आज हम उन्हीं की एक रचना आपके सामने रख रहे हैं।

यदि अन्य कानूनी शास्त्रों के समान इस भ्रामक शास्त्र, अर्थशास्त्र का उद्देश्य भी बल-प्रयोग के लिए बहाने ढूँढ़ना न होता तो उसका ध्यान इस विचित्र बात की ओर जाए बिना न रहता कि धन का वितरण-अर्थात् यह स्थिति कि कुछ लोग तो भूमि और पूँजी से वंचित कर दिए जाते हैं और कुछ लोग इतने संपन्न हो जाते हैं कि वे दूसरों को अपना दास बना लेते हैं—रुपए पर निर्भर है और केवल रुपए के बल पर ही एक समूह के लोग दूसरे समूह के लोगों के श्रम का शोषण करते हैं अर्थात् उन्हें अपना दास बनाते हैं।

मैं एक बार फिर कहता हूँ कि जिसके पास पैसा है वह सारा अनाज ख़रीदकर अपने अधिकार में ले सकता है और दूसरों को भूखा मारकर, यही बात आज हमारी आँखों के सामने बड़े व्यापक रूप में हो रही है। उन्हें रोटी के लिए तरसाकर पूरी तरह से अपना ग़ुलाम बना सकता है। इसीलिए यह आवश्यक प्रतीत होता है कि रुपए और दासता के पारस्परिक

संबंध को जानने की चेष्टा की जाए। किंतु अर्थशास्त्र यह विश्वासपूर्वक घोषित करता है कि रुपए का लोगों की दासता से कोई संबंध नहीं है।

अर्थशास्त्र कहता है-- रुपया भी अन्य पदार्थों के समान एक पदार्थ है, जिसका मूल्य-निर्धारण उसके उत्पादन-व्यय के आधार पर किया जाता है। अंतर केवल इतना ही कि मूल्य के मापदंड के रूप में और धन-संचय, विनिमय तथा भुगतान के लिए रुपया ही सबसे अधिक सुविधाजनक माना गया है। एक व्यक्ति जूते बनाता है, दूसरा अन्न पैदा करता है और तीसरा भेड़ पालता है। अपनी-अपनी पैदावार का सरलतापूर्वक विनिमय करने के लिए ये लोग रुपए का प्रचलन करते हैं। यह रुपया इस बात का द्योतक होता है कि किस उत्पादन में कितना श्रम करना पड़ा है। उसकी सहायता से लोग जूतों के तलों को भेड़ के मांस और पाँच सेर आटे से बदल सकते हैं।

इस 'काल्पनिक शास्त्र' के समर्थकों को अपने सामने इस प्रकार की अवस्था के काल्पनिक चित्र खींचने का बड़ा शौक़ है; किंतु वास्तव में ऐसी अवस्था संसार में कभी रही नहीं। ऐसे समाज की कल्पना उस प्राचीन और निर्दोष मानव-समाज की कल्पना के समान है, जिसके चित्र दार्शनिक अपने मस्तिष्क में खींचा करते थे, किंतु जिसका कभी कोई अस्तित्व नहीं रहा। मानव-समाज में जहाँ कहीं भी रुपए का इस रूप में प्रयोग हुआ है, वहीं सशक्त और सशस्त्र लोगों ने दुर्बल और निःशस्त्र लोगों पर बल प्रयोग किया है और जहाँ कहीं भी बल प्रयोग किया गया कहीं मूल्य के मापदंड के रूप में प्रयुक्त होने वाला रुपया, पशु, खाल, रोआ, धातु अथवा कोई अन्य पदार्थ विनिमय का माध्यम न रहकर बल प्रयोग से बचने का एक साधनमात्र रह गया। इसमें संदेह नहीं कि रुपए में वे सब निर्मल गुण हैं, जिनकी गणना अर्थशास्त्र कराता है; किंतु ये गुण उसी समाज में संभव हैं जहाँ मनुष्य मनुष्य पर बल-प्रयोग न करता हो अर्थात् जो एक आदर्श समाज हो। ऐसे समाज में रुपए का रुपए के रूप में-- अर्थात् मूल्य के एक सामान्य मापदंड के रूप में कोई अस्तित्व नहीं हो सकता, ठीक उसी तरह जैसे साधारण सरकारी दंड-व्यवस्था से मुक्त समाज में न तो कभी रुपए का ऐसा अस्तित्व था, न हो ही सकता था। किंतु हमारे जाने हुए जिस किसी समाज में भी रुपए का प्रचलन है, वहाँ उसे विनिमय का माध्यम बनने का महत्त्व केवल इसलिए प्राप्त हुआ कि उसका उपयोग बल

प्रयोग के साधन के रूप में होता था। इसलिए उसका मुख्य महत्त्व विनिमय के माध्यम के रूप में नहीं, बल्कि बल-प्रयोग या ज़ोर-ज़बर्दस्ती के शस्त्र के रूप में है। जहाँ जोर-ज़बर्दस्ती होती है, वहाँ रुपए का उपयोग विनिमय माध्यम के रूप में नहीं हो सकता, क्योंकि वह मूल्य के मापदंड का काम नहीं कर सकता। उसके मूल्य का मापदंड न बन सकने का कारण यह है कि जब समाज में एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को उसके गाढ़े पसीने की कमाई से वंचित कर देता है तब वहाँ तुरंत इस मापदंड का उल्लंघन हो जाता है। यदि बाज़ार में ऐसी गायें और ऐसे घोड़े लाए जाएँ, जिनमें से कुछ को तो उनके मालिकों ने स्वयं पाला हो और कुछ अपने पोषकों से बलात् छीन लिए गए हों, तो यह स्पष्ट है कि उस बाज़ार में गायों और घोड़ों का मूल्य उनके पोषक-व्यय के अनुसार नहीं होगा और इस अंतर के कारण बाज़ार के दूसरे सभी पदार्थों के मूल्य में अंतर पड़ जाएगा। दूसरे शब्दों में यों कहिए कि उन पदार्थों का मूल्य रुपए द्वारा निश्चित नहीं होगा। इसके अतिरिक्त, यदि कोई व्यक्ति बलपूर्वक गाय, घोड़ा या घर प्राप्त कर सकता है तो उसके लिए बलपूर्वक रुपया प्राप्त करना भी संभव है और उस रुपए से वह सभी पदार्थ ले सकता है; किंतु जब स्वयं रुपया ही बलपूर्वक प्राप्त किया जाता है और उससे अन्य वस्तुएँ ख़रीदी जाती हैं तो उसमें विनिमय से माध्यम का कोई लक्षण कैसे शेष रह सकता है? जब कोई व्यक्ति किसी से बलपूर्वक रुपया छीनकर उसे दूसरों के परिश्रम से उत्पन्न किए गए पदार्थों के बदले में देता है तब उसका यह व्यापार विनिमय नहीं कहलाएगा। वह मनुष्य तो जो-कुछ चाहता है रुपए के बल पर ले लेता है।

किंतु यदि कभी इस प्रकार का कल्पित और असंभव समाज रहा भी हो जहाँ जनता पर सरकारी दंड-व्यवस्था का अंकुश न रहते हुए भी रुपए (सोने या चाँदी) से मूल्य के मापदंड और विनिमय के माध्यम का काम लिया जाता रहा हो, तो भी वहाँ बल का प्रयोग होते ही रुपए का उक्त गुण नष्ट हो गया होगा। थोड़ी देर के लिए मान लीजिए कि ऐसे समाज में कोई अत्याचारी विजेता के रूप में प्रवेश करता है। वह आततायी जनता की गायें, उनके घोड़े, कपड़े और घर-बार सब छीन लेता है; किंतु चूँकि इन सबका प्रबंध करने में उसको असुविधा होती है, इसलिए स्वभावत: उसके मन में जनता से समस्त रुपया-पैसा छीन लेने का विचार उठता है, जो सब प्रकार के मूल्यों का मापदंड समझा जाता है और जिससे विनिमय करके सब वस्तुएँ प्राप्त की जा सकती हैं। किंतु उस समाज में रुपए का मूल्य के मापदंड में प्रयोग

होना तत्काल बंद हो जाता है, क्योंकि सब वस्तुओं के मूल्य अत्याचारी की इच्छा पर आश्रित हो जाते हैं। जिस वस्तु की आततायी को सबसे अधिक आवश्यकता होगी और जिसके लिए वह सबसे अधिक रुपया दे सकेगा, वही वस्तु सबसे अधिक बहुमूल्य हो जाएगी। इसी प्रकार जिस वस्तु की उसे कम-से-कम आवश्यकता होगी और जिसके लिए वह कम-से-कम पैसे देना चाहेगा वह वस्तु सबसे सस्ती हो जाएगी। अतः जिस समाज में बल-प्रयोग का बोलबाला होता है उस समाज में तत्काल रुपए में वे गुण प्रवेश कर जाते हैं, जिनकी सहायता से आततायी जनता पर हिंसा का प्रयोग करता है। पीड़ितों के लिए रुपया विनिमय का माध्यम अवश्य बना रहता है, किंतु उसी सीमा तक जिस सीमा तक उसका इसमें प्रयोग किया जाना आततायी को सुविधाजनक होता है।

ज़रा ऐसे समाज की स्थिति पर विचार कीजिए। दास लोग अपने स्वामी को कपड़ा, मुर्गा-मुर्गी, और भेड़-बकरी लाकर देते हैं तथा उनके लिए दिनभर चक्की पीसते हैं। स्वामी इन पदार्थों के बदले रुपया लेने को तत्पर हो जाता है और इनमें से प्रत्येक का मूल्य निर्धारित कर देता है। जो लोग अन्न, वस्त्र और पशु नहीं दे सकते या चाकरी नहीं बजा सकते, उन्हें इस बात की छूट मिल जाती है कि वे इनके बदले एक निश्चित रकम दे दें। स्पष्ट है कि इस स्वामी के दास-समुदाय में विविध वस्तुओं का मूल्य स्वामी की इच्छा पर ही निर्भर होगा। जो वस्तुएँ उसे मिलती हैं, उनका वह उपभोगं करता है। किसी वस्तु की उसे अधिक आवश्यकता होती है और किसी की कम और उसी के अनुसार वह उन वस्तुओं का अधिक या कम मूल्य निर्धारित करता है। स्पष्टतः उसकी ही स्वेच्छा और आवश्यकताओं के अनुसार इन पदार्थों का मूल्य उन व्यक्तियों के मध्य भी निर्धारित होता है जो उसे रुपए अदा किया करते हैं। यदि उसे अन्न की आवश्यकता होती है तो निश्चित परिमाण में अन्न न मिलने पर वह उसके लिए अधिक रुपए की माँग करता है और निश्चित परिमाण में वस्त्र, पशु तथा श्रम न मिलने पर उनकी कीमत सस्ती रख देता है। परिणाम यह होता है कि जिनके पास अन्न नहीं होता वे अपने स्वामी की संतुष्टि के लिए अन्न ख़रीदने के अभिप्राय से अपनी पैदावार, श्रम, कपड़ा या पशु दूसरों के हाथ बेच देते हैं। यदि ज़मींदार इन सब पदार्थों के बदले रुपया लेना स्वीकार भी कर ले तब भी इनका मूल्य उत्पादन-श्रम के आधार पर निश्चित नहीं होगा, बल्कि वह दो

बातों पर निर्भर होगा-- एक तो यह कि ज़मींदार कितने रुपए की माँग करता है और दूसरे यह कि किसानों द्वारा उत्पन्न किए गए किन पदार्थों की उसे सबसे अधिक आवश्यकता है और किन वस्तुओं के लिए वह अधिक मूल्य देगा और किनके लिए कम। ज़मींदार किसानों से जो अपना रुपया वसूल करता है उसका-- जहाँ तक किसानों का प्रश्न है-- चीज़ों की कीमत पर केवल दो परिस्थितियों में असर नहीं पड़ता-- एक तो तब जबकि ये किसान या ये दास संसार के अन्य व्यक्तियों से बिल्कुल पृथक् होकर रहें और उनका आपस में और अपने स्वामी के अतिरिक्त किसी दूसरे से संपर्क न रहे; दूसरे तब जब ज़मींदार उस रुपए से अपने गाँव में नहीं, बल्कि कहीं बाहर चीज़ें ख़रीदे। केवल इन्हीं अवस्थाओं में मूल्य नाममात्र के लिए परिवर्तित होने पर भी अपेक्षाकृत ठीक रह सकता है और तभी मूल्य-निर्धारण का मापदंड और विनिमय का माध्यम बनने का महत्त्व प्राप्त हो सकता है। किंतु यदि इन किसानों का पास-पड़ौस के लोगों से आर्थिक संबंध हो तो, जहाँ तक इन पड़ौसियों का संबंध है, स्वामी की अधिक या कम माँग के अनुसार मूल्य बढ़ जाएँगे। यदि उनकी अपेक्षा उनके पड़ोसियों को अपने ज़मींदार को कम रुपया देना पड़ता है तो पड़ोसियों की तुलना में उनकी चीज़ें सस्ती बिकेंगी और इसी तरह यदि दूसरे गाँव वालों को अधिक रुपए देने पड़ते हैं तो उनकी पैदावार महँगी बिकेगी।

दूसरी अवस्था, जब ज़मींदार की रुपए की माँग का चीज़ों की कीमत पर किसानों के लिए कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, वह है जब ज़मींदार अपने एकत्र किए हुए रुपए से अपने ही किसानों की चीज़ें न खरीदें। किंतु यदि वह इस रुपए का प्रयोग अपने ही किसानों द्वारा उत्पादित पदार्थों के ख़रीदने में करेगा तो यह स्पष्ट है कि उन पदार्थों का मूल्य निरंतर परिवर्तित होता रहेगा और इस बात पर निर्भर होगा कि ज़मींदार किस वस्तु विशेष को ख़रीदता है। मान लीजिए कि कोई स्वामी अपने दासों को स्वेच्छानुसार काम या व्यापार करने की अनुमति देने के लिए उनसे कसकर रुपए माँगता है और कोई पड़ोसी ज़मींदार इसी अनुमति के लिए कम रुपए माँगता है। स्पष्ट है कि ऐसी दशा में पहले ज़मींदार की जमींदारी में दूसरे ज़मींदार की जमींदारी की अपेक्षा सब वस्तुएँ सस्ती होंगी और इन दोनों ज़मींदारियों में चीज़ों की कीमत प्रत्यक्ष रूप से इस बात पर निर्भर होगी कि दासों द्वारा भरी जानेवाली रकम घटाई जाती है या बढ़ाई।

मूल्यों पर बल-प्रयोग के जो अनेक प्रभाव पड़ते हैं उनमें से एक यह है। दूसरा प्रभाव, जो पहले से ही उद्भूत होता है, विभिन्न वस्तुओं के मूल्यों के पारस्परिक संबंध पर पड़ता है। मान लीजिए कि एक ज़मींदार को घोड़ों का शौक़ है और उनके लिए वह अच्छे दाम देता है; दूसरे को तौलियों का शौक़ है और वह उनके लिए अच्छे पैसे देता है। स्पष्टतः इन दोनों ज़मींदारों की रियासतों में क्रमश: घोड़ों और तौलियों की कीमतें ऊँची होंगी और इनकी कीमतों तथा गाय और अन्न की कीमतों में बड़ा अंतर होगा। यदि कल तौलियों के शौकीन ज़मींदार की मृत्यु हो जाए और उसके उत्तराधिकारी को मुर्ग़े-मुर्ग़ियों का चाव हो तो स्पष्ट है कि तौलियों का मूल्य गिर जाएगा और मुर्गे-मुर्गियों का बढ़ जाएगा। जिस समाज में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को बलपूर्वक दबाव में रख सकता है, उस समाज में रुपए की मूल्य-निर्धारण-शक्ति तत्काल आततायी की स्वेच्छा पर आश्रित हो जाती है और रुपया गाढे पसीने से उत्पन्न किए हुए पदार्थों के विनिमय का माध्यम न रहकर दूसरे के श्रमशोषण का सबसे सुविधाजनक साधन बन जाता है। अत्याचारी को रुपए की आवश्यकता विनिमय के साधन के रूप में नहीं होती। उसको इसकी आवश्यकता मूल्य के मापदंड निर्धारित करने के लिए भी नहीं होती, क्योंकि मूल्य तो वह स्वयं निर्धारित करता है। उसे रुपए की आवश्यकता केवल इसलिए होती है कि वह अत्याचार आसानी से कर सके; कारण रुपया संचित किया जा सकता है और वह अधिक-से-अधिक व्यक्तियों को दासता के बंधन में बाँधकर रखने का सबसे सरल साधन है। जिस समय जितने घोड़ों, गायों और भेड़ों की आवश्यकता पड़े उस समय उतने ही घोड़े, गाय और भेड़े मिल जाएँ, इस उद्देश्य को दृष्टि में रखकर यदि सारे जानवर एक साथ ही छीनकर रख लिए जाएँ तो ऐसा करना सुविधाजनक नहीं हो सकता, क्योंकि आखिर इन सबका पेट भी तो भरना पड़ता है। यही बात नाज की भी है, क्योंकि उसके सड़-गल जाने की संभावना रहती है। यही बात मज़दूरों तथा ग़ुलामों के विषय में भी कही जा सकती है। आज एक हज़ार मज़दूरों की आवश्यकता पड़ सकती है, कल एक की भी नहीं। जिनके पास रुपया नहीं है, उनसे रुपया माँगने से ये सारी असुविधाएँ दूर हो सकती हैं और आवश्यकता पड़ सकती है, कल एक की भी नहीं। जिनके पास रुपया नहीं है, उनसे रुपया माँगने से ये सारी असुविधाएँ दूर हो सकती हैं और आवश्यकतानुसार सदा प्रत्येक वस्तु मिल सकती है। यही

मुख्य उद्देश्य है जिसके लिए अत्याचारी को रुपए की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त उसे रुपए की आवश्यकता इसलिए भी होती है कि वह चाहता है कि उसकी श्रम-शोषण शक्ति थोड़े-से-लोगों तक ही सीमित न रहे, बल्कि रुपए की आवश्यकता अनुभव करने वाले सब व्यक्तियों तक व्याप्त हो जाए। यदि रुपया न हो तो किसी भी ज़मींदार में अपने किसान-दासों के अतिरिक्त और किसी के शोषण की सामर्थ्य नहीं आ सकती; किंतु जब दो ज़मींदार एक साथ मिलकर अपने किसान-दासों से रुपए माँगने का निश्चय करते हैं तो दासों के पास रुपया न होते हुए भी वे दोनों ज़मींदारियों के समस्त साधनों का समान रूप से शोषण करने में समर्थ बन जाते हैं।

इस प्रकार रुपए की सहायता से अत्याचारी को दूसरों के श्रम से लाभ उठाने में अधिक सुविधा मिलती है और वह रुपया केवल इसी कार्य के लिए चाहता है। जिस व्यक्ति के साथ बल-प्रयोग किया जाता है-- अर्थात् जिस व्यक्ति के श्रम का प्रतिफल उससे छीन लिया जाता है, उसे रुपए की आवश्यकता न तो विनिमय-माध्यम के रूप में पड़ती है, न मूल्य के मापदंड के रूप में; क्योंकि पहली दशा में तो वह रुपए के बिना ही वस्तु-विनिमय कर लेता है, जैसा कि सभी सरकारविहीन देश करते हैं और दूसरी दशा में मूल्य का निर्धारण उससे पूछे बिना ही कर लिया जाता है। इसी प्रकार उसे बचाने या भुगतान करने के लिए भी रुपए की आवश्यकता नहीं पड़ती; क्योंकि जहाँ तक बचत का प्रश्न है जिस मनुष्य से उसके श्रम का प्रतिफल ले लिया जाता है वह बचा ही क्या सकता है? और जहाँ तक भुगतान की बात है, पीड़ित व्यक्ति को लेने की अपेक्षा देना ही अधिक रहता है; और यदि उसको कुछ मिलता भी है तो रुपए के रूप में नहीं बल्कि पदार्थ के रूप में। यह बात उस व्यक्ति के साथ लागू होती है जिसे अपने काम के बदले सीधे मालिक की दुकान से सामान मिल जाता है। प्राय: यही दशा उस व्यक्ति की होती है, जिसकी सारी कमाई जीवन-संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बाहरी दुकानों से सामान ख़रीदने में चट हो जाती है। उससे रुपया माँगा जाता है और साथ-ही-साथ उसे यह धमकी दी जाती है कि यदि वह रुपए नहीं देगा तो उसको भूमि और अन्न कुछ नहीं मिलेगा या उसकी गाय या उसका मकान उससे ले लिया जाएगा और उसको या तो मेहनत-मज़दूरी करनी पड़ेगी या कारागार में सड़ना होगा। इस स्थिति से वह तभी मुक्त हो सकता है जब अपने परिश्रम से पैदा की हुई चीज़ों और स्वयं अपने परिश्रम को

ऐसे मूल्य पर बेच दे जो न्याययुक्त विनिमय द्वारा नहीं, बल्कि पैसा माँगने वाली सत्ता की शक्ति द्वारा निश्चित किया गया हो।

अत: ऐसी स्थिति में जबकि मूल्य पर कर और लगान का प्रभाव हर समय और हर जगह-ज़मींदारियों में छोटे पैमाने पर और राज्यों में बड़े पैमाने पर पड़ता है; जबकि मूल्यों के चढ़ाव-उतार का कारण उतना ही स्पष्ट होता है जितना कि पर्दे के पीछे देखने वाले को पुतलियों के चलने-फिरने का कारण; यह कहना कि रुपया विनिमय का माध्यम और मूल्य का मापदंड है, यदि और कुछ नहीं तो कम-से-कम आश्चर्यजनक तो है ही।

*****

स्रोत : पुस्तक : लियो टॉलस्टॉय प्रतिनिधि रचनाएँ भाग-2 (पृष्ठ 141) संपादक : कृष्णदत्त पालीवाल रचनाकार : लियो टॉलस्टॉय प्रकाशन : सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन संस्करण : 2019